पंचम स्वर



संपादक
गोपालप्रसाद व्यास

पंचम स्वर

हिन्दी की पांच अभिनव कवयित्रियों की
प्रतिनिधि रचनाओं का संग्रह

RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No- 4792

सम्पादक
गोपाल प्रसाद व्यास

दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन

□□

दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
३२, नार्थ एंड काम्पलैक्स,
रामकृष्ण आश्रम मार्ग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

□□

जनवरी, १९७७

□□

बीस रुपये

□□

रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
द्वारा मुद्रित

षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम और पंचम। तो यह पंचम स्वर है। इसमें पहला, तीसरा और पाँचवाँ या दूसरा और चौथा पंचम स्वर है, या फिर प्रत्येक स्वर पंचम है—यह आप जानें। हम तो इतना जानते हैं कि संगीत का पंचम स्वर जब साहित्य का भी कोकिल-कूजन बन जाता है, तो भाषा की अमराई में बौर महकने लगते हैं। क्योंकि कविता में आजकल पतझड़ है, और हर पतझड़ के बाद वसन्त आता ही है, और वसन्त के आने पर पंचम स्वर फूटता ही है। इसी आशा से हम यहां 'पंचम स्वर' की पेशकश कर रहे हैं।

उड़ते पंछियों को पहचानने वाले लोग कहते हैं कि पंचम स्वर में गाने वाली कोकिल मादा नहीं नर है। होगी, हमारी हिन्दी में तो कोकिल, काकली, कविता, कला, आत्मा सब नारीवाचक हैं। लेखनी, पुस्तिका, वाणी, प्रतिभा, प्रगति, किसी को भी तो हिन्दी में पुरुषवाची होने का गौरव नहीं मिला। क्या इस नामकरण के पीछे भाषा और साहित्य के पुरोहितों की ऐसी मान्यता नहीं थी कि कला का क्षेत्र नारियों के लिए ही श्रेयस्कर है ? इसमें मतभेद हो सकता है कुछ पुरुषों को। लेकिन क्या साहित्य और कला को प्रेरणा देने वाली नारी स्वयम् साहित्य-कला की अधिष्ठात्री और स्रष्टा नहीं बन सकती ? उदाहरणों की कमी नहीं, नामों में जाने की आवश्यकता नहीं। विश्व के ज्ञात इतिहास के आदि से लेकर इस 'पंचम स्वर' के प्रकाशन तक, नारी ने जब-जब कलम उठाई है, तब-तब विश्व-वाटिका में ऐसे सुमन खिले हैं कि जिनकी सुवास से आज भी साहित्य का नन्दन वन सुरभित हो रहा है। संघर्ष पर नारी का एकाधिकार भले ही न हो, उसके सृजन के दायित्व से कौन मुकर सकता है ? सहृदयता, संवेदनशीलता और भावुकता—क्या हैं ये सब ? दया, क्षमा, करुणा रति, विरति और जिसकी तलाश में आज का मानव भटक रहा है वह शान्ति ? क्या वह नारी से नहीं मिलती ? और क्या वह नारी से ही नहीं मिलेगी ? क्या कविता की किरण जब भी पूर्णिमा की चाँदनी की भाँति जगतीतल पर सुधा बखेरेगी तो उसका श्रेय किसी नारी-कंठ के पंचम स्वर को ही प्राप्त नहीं होगा ? क्या नारी आवेगमयी होकर भी धात्री, धरित्री, मन्दाकिनी-कलानेत्री और स्वयम् अनंत कलाओं से विभूषित नहीं है ?

सुना है कि कविता अभ्यास से सहज हो जाती है। तुकों की तलाश में हास्यास्पद बनते हुए कवियों, अनगढ़ गद्य को ही कविता बताने वाले कुछ सुविधा प्राप्त लेखकों और विदेशी साहित्य की तर्ज पर ही नहीं उसका लगभग अनुवाद कर देने वाले कारीगरों की आज की कविताओं को देखकर यह भली-भाँति जाना जा सकता है। लेकिन अपने को साहित्य में प्रतिष्ठित करने या पत्र-

पत्निकाओं में छपने के लिए किसी नारी ने कविता का अभ्यास करने के लिए कोई ट्यूटर रखा हो या उस अभ्यास के लिए अपनी उम्र की कई सीढ़ियाँ पार की हों, इसकी जानकारी हमें नहीं। कविता यदि भावना है तो वह नारी-हृदय में सहज रूप से स्वयम् प्रतिष्ठित है। 'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यं' से लेकर सामाजिक अनुभूतियों तक की जितनी व्याख्याएं कविता के सम्बन्ध में मिलती हैं हमें तो वह सब ही नारी सुलभ लगती हैं—'यत्क्रौंच मिथुनादेकंम्' से लेकर 'वियोगी होगा पहला कवि' तक जो वियोग की, विप्रलम्भ की, घुटन की, उच्छ्वास की या आवेग की मनःस्थितियां हैं वे कविता के जन्म का ही नहीं, नारी के जन्म का भी कारण हैं, पर छोड़िए इसे। हिन्दी में कवयित्रियों की अपनी कविताओं के पृथक-पृथक और कई-कई कवयित्रियों को एक साथ जुटाकर भी कुछ संग्रह निकले हैं। प्रस्तुत संग्रह की कवयित्रियों की रचनाएँ भी ऐसे संग्रहों में छपती रही हैं। तब ऐसे वजनी कागज पर ऐसा खर्चीला संग्रह क्यों ? क्या ये कवयित्रियाँ ही हिन्दी की प्रतिनिधि कवयित्रियाँ हैं ? क्या ऐसी और इनसे भी अधिक मार्मिक और संवेदनशील रचनाएँ लिखने वाली अन्य नहीं ? वर्तमान में श्रीमती महादेवी वर्मा, सुमित्ना कुमारी सिन्हा, स्नेहलता स्नेह, शान्ति मेहरोत्रा, दुर्गावती सिंह, कीर्ति चौधरी, मधु भारतीय, ज्ञानवती सक्सेना आदि कई ऐसे नाम हैं। इनकी उपेक्षा क्यों ? फिर इस संग्रह में सभी नई कवयित्रियाँ ही हैं ? नई से तात्पर्य केवल उम्र से ही नहीं है, इनमें से कई का लेखन क्या पुरानी तर्ज़ का नहीं है ? पंचम स्वर नाम देने से ही क्या इस संग्रह की सभी कवयित्रियाँ काव्य-कोकिला बन जाएंगी ?

प्रश्न किस प्रयत्न के बारे में नहीं किए जा सकते ? कौन-सा ऐसा सिद्धांत है जिसे तर्क से खंडित नहीं किया जा सकता ? फिर हमारी हिन्दी में तो विधि को नहीं निषेध को ही महत्त्व प्राप्त है। क्या हम विनयपूर्वक अपने पत्न-पत्रिकाओं के सम्पादक बन्धुओं और लाभ के लिए किताबें छापने वाले प्रकाशकों से यह पूछ सकते हैं कि आज कविता के ह्रास में उनका प्रमुख हाथ नहीं है ? जब जमे हुए पुरुषार्थी कवियों के लिए ही अभिव्यक्ति को प्रकाश में लाने के साधन नहीं हैं तब सहज संकोची, शीलसंपन्न और घर की चारदीवारी में बन्द इन सरस्वती की वरद-पुत्नियों का इस आधुनिकता के हल्ले में क्या ठिकाना ? निस्संदेह सैकड़ों हिन्दी कवयित्रियां आज हिन्दी में होंगी। लेकिन वे कैसा लिखती हैं, किस स्थिति में हैं, उनकी खोज-खबर लेने वाला कोई है ? प्रोत्साहन की बात छोड़िए, वह तो आज की दुनिया में लोगों ने अपने लिए ही सुरक्षित कर रखा

है। तब इन्हें उपेक्षा के दंश से बचाना किसका दायित्व है? पंचम स्वर के प्रकाशन की भूमिका यही है।

रमा सिंह, चन्द्ररेखा सिंह, कुसुम अंसल, इन्दु जैन और इन्दु कौशिक—इस संग्रह की ये पांच कवयित्रियां। इनकी कविताएँ इस क्रम से नहीं हैं। वे अकारादि क्रम से हैं। क्या फर्क पड़ता है? १११ की संख्या को किधर से भी पढ़ो १११ ही रहेगी। माला को कहीं से भी शुरू कर दो। कविताएँ प्रारंभ से पढ़ो, बीच में से देखो या अन्त से, कविता कविता है। लेकिन कविता क्या है और उससे आप क्या अपेक्षा रखते हैं यह आपके मन की और स्तर की बात है। इस संग्रह के संबंध में या कविता के किसी भी संग्रह के संबंध में उसकी रसात्मक अनुभूति या भाव-प्रवणता के संबंध में न कोई दावा कर सकता है और न करना चाहिए। कविता तो रस का सागर है। उसमें से श्रोता या पाठक अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार रस ग्रहण कर सकता है। अब जिसके पास जैसा पात्र हो। अगर किसी-के पास पात्र नहीं है और सिर्फ परीक्षण नली (टेस्ट ट्यूब) ही है तो क्या किया जाए। वह स्वतंत्र है परीक्षण के लिए। हां, हम अपनी ओर से इतना निवेदन अवश्य करना चाहते हैं कि इन कविताओं में विविधता है, मौलिकता है और अपने को व्यक्त करने की क्षमता भी है। इस संग्रह की कविताएँ पुराने से पुराने और नये से नये प्रतीकों, बिम्बों और रसास्वादन की विविध संयोजनाओं से संयुक्त हैं। इनमें पुराने ढर्रे के गीत भी हैं, गजल भी हैं, नये प्रकार की वक्रता, आक्रोश और छटपटाहट भी है। कहा जा सकता है कि ये कविताएँ हिन्दी कविता के सभी आयामों को छूने वाली हैं। इनमें गहराई भी है, फैलाव भी है, स्थिरता भी है और गतिशीलता भी। इनमें कुछ रचनाएँ आप ऐसी पाएँगे जो हिन्दी गीत की अभिनव विधा से पूरी तरह जुड़ी हुई हैं और ऐसी रचनाओं की भी इसमें कमी नहीं है जिन्हें नई कविता के अभिनव आन्दोलनों का सहभागी बनाया जा सके। मन के अंतर्द्वंद्वों से लेकर सामाजिक उथल-पुथल तक की झाँकी इन कविताओं में मिल जाएगी। हम उदाहरण दे सकते हैं, परन्तु नहीं, यह काम पाठकों और समीक्षकों का है। हम तो केवल यही कहना चाहते हैं कि हिन्दी कविता में आज जो है वह इस संग्रह में भी है, शिल्प की दृष्टि से भी और भाव-विधान की दृष्टि से भी; पुष्टता और परिपक्वता की दृष्टि से ही नहीं, अनगढ़ता की दृष्टि से भी। अनगढ़ता का नाम ही तो आज की परिभाषा में नवीनता है। इसका अर्थ यह है कि हमारी कवयित्रियां केवल कविता ही नहीं लिखतीं, वे साहित्य और समाज के आन्दोलनों से भी अनुस्यूत हैं। वे अपनी अभिव्यक्ति में किसी भी समर्थ कवि से कम नहीं। इन रचनाओं को पढ़ने के बाद आपको ऐसा

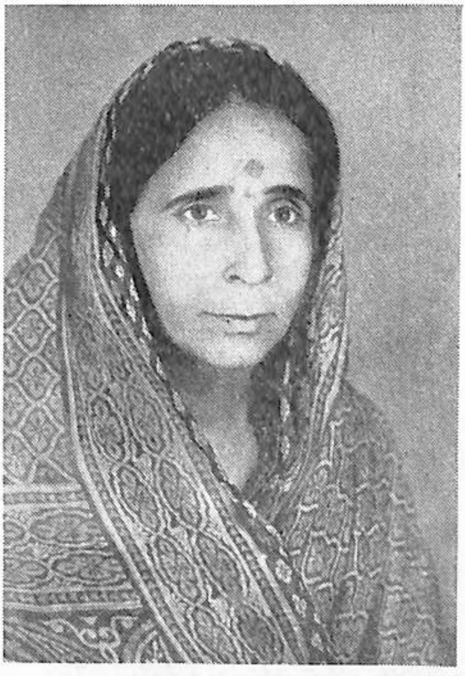
नहीं लगेगा कि हमारी आज की कवयित्रियां अपने कवि-धर्म के पालन में किसी प्रकार की कोताही बरत रही हैं। वे पुरुषोचित साहस के साथ आज कविता के मैदान में हैं। लेकिन अपने नारी-धर्म को छोड़कर नहीं। उनके अतुकांत में भी लय है, संगीत है और है एक अनूभूतिपूर्ण सांस्कृतिक संस्पर्श जो किसी न किसी प्रकार गीत से जुड़ा हुआ है।

प्रेस के अभाव में कविता को शताब्दियों तक श्रव्य बने रहने को विवश होना पड़ा। श्रव्य को श्रुति-मधुर होना ही चाहिए। प्राचीन कविता का यह विशेष गुण रहा है। प्रेस ने कविता को दृश्य बनाया। दृश्य का बोधगम्य होना आवश्यक है। जो श्रव्य में था वह दृश्य में नहीं है और जो दृश्य में है वह श्रव्य के लिए जरूरी नहीं था। भारत को छोड़कर अधिकांश देशों की कविता अब दृश्य ही हो गई है। लेकिन दृश्य ने कविता के प्रभाव और विस्तार को आगे बढ़ाने के बजाय पीछे की तरफ ही धकेला है। कागज पर आकर कविता बोझिल-से-बोझिल होती चली गई। लेकिन कविता-प्रेमियों के संस्कार अभी भी इस बोझ को मन से उठाने को तैयार नहीं। इसीलिए कविता नहीं छप रही, नहीं बिक रही या कहें जन-मानस पर अपना वैसा प्रभाव नहीं डाल रही जैसा कि आज से पच्चीस वर्ष पूर्व डाला करती थी। इसलिए साहित्यकार आज गद्य और उसकी विविध विधाओं की ओर उन्मुख हो रहे हैं। और सच कहा जाए तो आज की कविता भी लगभग गद्य ही हो गई है। गद्य बुरी चीज नहीं है, उसका अपना रंग है लेकिन कविता गद्य नहीं है। कविता को कहीं-न-कहीं मन के या बाहर के संगीत से जुड़ना ही चाहिए। इस बात को मानकर आज अनेक कवि और कवयित्रियां अपने प्रयोग कर रहे हैं। इन प्रयोगों की झाँकी इस संग्रह में भी है। लेकिन कठिनाई यह है कि इस आन्दोलन को नष्ट करने वाले और नकारने वाले लोग भी हिन्दी में काफी बड़ी संख्या में हैं। उनके पास अपनी बात कहने के लिए बड़े सशक्त साधन भी हैं। हमारी पत्र-पत्रिकाओं ने तो नई कविता से जुड़कर अपने को इतना एकांगी बना लिया है कि जो पुराने ढर्रे के लोग इस नवीनता से प्रेरित होकर कुछ नये कदम बढ़ाने की हिम्मत भी करते हैं तो उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता। जब कवियों का यह हाल है तो कवयित्रियों को कौन पूछे। शायद इस संग्रह की रचनाएँ उन्हें अपने मत में परिवर्तन करने के लिए कुछ प्रेरित कर सकें। यदि ऐसा हुआ तो इस संग्रह के प्रकाशन की योजना अपनी यत्किंचित् सार्थकता प्राप्त करने का हल्का-सा गर्व अनुभव कर सकेगी।

—गोपालप्रसाद व्यास

□□

इन्दु कौशिक



जन्मतिथि

१२ मार्च, १९३१ (हापुड़)

शिक्षा

साहित्यरत्न

साहित्य

अभी तक प्रकाशन और प्रसिद्धि से दूर।

विशेष

कविता लिखती हैं, उसीमें जीती हैं। कभी-कभी कवि-सम्मेलनों के मंच पर दिखाई देती हैं। लखनऊ से निकलनेवाली 'उल्का' नामक पत्रिका का कुछ साल संपादन।

पता

सी-४/६२, लौरेन्स रोड
नई दिल्ली-११००३५

संसार में आने के तुरंत बाद हमारा परिचय सर्वप्रथम स्पर्श अर्थात् छुअन से होता है। उसके बाद हमारी पहचान होती है गंध से। माँ की गोद से अलग होते ही शिशु रोना-बिलखना आरंभ कर देता है, उसका कारण स्पर्श और गंध का निरालापन ही होता है। स्नेह, ममता, क्रोध, विरति, करुणा इत्यादि अनेक आवेशों, आवेगों तथा संवेगों में छुअन के प्रकार ही बदल जाते हैं। चेतना के विकास के साथ-साथ ही वह ध्वनि और रंगों से आकर्षित हो उनका जायजा लेने लगता है। इस प्रकार विवेचन, ज्ञान और विवेक, ये बहुत बाद की स्थितियां हैं।

वातावरण तथा परिस्थिति हर व्यक्ति को अलग मानसिक धरातल तथा कोणों में स्थापित करते हैं, वैचारिक दृष्टियों को विभिन्नता देते हैं। पर मूलभूत मानवीय अनुभूतियों में कहीं भी और किसी भी तरह का प्रकार-वैविध्य नहीं होता। सुख-दुःख हर व्यक्ति को एक ही प्रकार से आंदोलित करता है। जरूरी नहीं है कि हर किसीका विचार मेरे विचार से मिले, पर कविता के बारे में मेरा अपना मत यही है कि—"किसी भी एक बिंदु पर, किसी भी एक बिंदु से, इसे परिभाषित करना संभव नहीं।"

इन्दु कौशिक

यह हमारी स्पर्श से विवेक तक की अनुभूति-यात्रा है। इसका सर्वप्रथम गुण भी इसकी 'छुअन' है। फिर यह गंध की भाँति हमें आवेष्टित कर हमारे भीतर रम जाती है, जिज्ञासा और कौतूहल लेकर आगे बढ़ती है और संसार की समस्त अनुभूतियों को व्याख्यायित एवं विवेचित करती है।

कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ सदा ही ऐसा होता है जो हमारे मन को छू लेता है। हमारे अंतर्मन को झिझोड़कर, हमारी बुद्धि को आंदोलित कर हमें सोचने के लिए विवश करता है। सोचना कहने की छटपटाहट को जन्म देता है और अभिव्यक्ति के माध्यम देता है।

ये माध्यम संसार की विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न कोणों से संस्कारित हुए हैं। इनके किसी भी एक संस्करण को हम 'यही कविता है' कैसे कह सकते हैं?

मुझे तो जो छू ले, अंकवार भर ले, जो मुझमें रमण करे, जो मुझमें भरी-भरी रहे, मैं जिसमें भरी-भरी रहूँ वही कविता लगती है। वह कविता मेरी भी हो सकती है, और किसीकी भी।

इस भरे-पूरेपन को किन्हीं भी काल-खंडों में विभाजित नहीं किया जा सकता। किसी भी एक रंग से इसका रूपायन संभव नहीं। यह फलक इतना बड़ा, इतना विशाल है कि सब रूप, सब रंग, सारे बिंब इसमें समाहित हैं। हाँ, व्याख्या सबकी अलग और अपनी है। बात केवल व्यक्ति की सामर्थ्य पर आकर समाप्त होती है। आत्मसात् करने से लेकर तल्लीन होने तक की प्रक्रिया में जितना परायापन होगा उतना ही अटपटा-सा लगने लगेगा। रचना-प्रक्रिया के इन्हीं क्षणों की व्याख्या में मेरा गीत 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक' है। कागज पर बोए गए ये गंध-बीज किसे-किसे, किस-किस भाँति छू-परस सकेंगे इसका कोई लेखा-जोखा काश, मिल सकता और मैं उसे सजा-सँवारकर कहीं किसी गुप्त आनंद-कोष में रख सकती होती तो बात कुछ और ही होती।

—*इन्दु कौशिक*

□□

इस भाव से
उस भाव की
आसक्ति से अनुरक्ति तक
कितना मनोरम यह सफर
अनुभूति से
अभिव्यक्ति तक

स्वर का नियोजित संगमन
इस शब्द से
उस शब्द में
कितने प्रतिष्ठित ये चरण
इस लब्ध से
उस लब्ध में
प्रारूप से प्राकार के
वर्चस्व से विज्ञप्ति तक

विज्ञान की गति से त्वरित
हम अंकुरित
हम पल्लवित
वह सौर-मंडल यह धरा
हर गिरि-शिखिर, हर कंदरा
उस काल से
इस काल के
हर व्यक्ति से हर व्यक्ति तक

□□

□□

श्वेतकेशी दिन हुआ है शाम
उत्तरार्द्धों में बँधा इतिहास
किसके नाम

एक संगत तर्क के अनुरूप
दे रही है छाँह—ढलती धूप
हैं धरा के भाल पर
नभ के अधर ठंडे
यह असंभव, कीमती अहसास
किसके नाम

एक सीझी दृष्टि का आकाश
कौन से ऋतु - चक्र में उलझा
समय का पाश
हो चुके हैं उम्र के आयाम बेमानी
यह असंगत, जी रहा हर साँस
किसके नाम

□□

□□

जैसे-जैसे चला जमाना
वैसे-वैसे चली
सहम कर
सिमटी-सिमटी गली
किसने लागू किए यहाँ पर
सड़कों के अधिनियम
भभक जलते-बुझते संकेत
आगे बढ़ते चिह्नों को
चौराहे लील गए

शीत-युद्ध की गर्म सुर्खियाँ
ले अखबार छपे
हम हर दिन ही हर कालम में
सौ-सौ बार छपे
रेखांकित आवश्यकताओं के
अंतर्गत हम
कितने ओछे पैमानों से
बारंबार नपे
अनाहूत अभिमंत्रित जल के
छींटे कील गए

जिस मन के कोमल कोने में
हमने कक्ष चिना
उसने अपनी ईंट-ईंट को
सौ-सौ बार गिना
मंजिल पर मंजिल, जीने पर जीने
बुने-बने
लगता केवल चिकनी माटी
में ही हाथ सना
और इमारत के साए भी
जड़ तक सील गए

□□

□।□

साँस के धागे बुनना बटना
पल-पल बढ़ना, पल-पल घटना

जोड़ के सारे हिज्जे-हासिल
अपने खाते आप पलटना

चौराहों की दिनचर्या है
इससे जुड़ना, उससे कटना

राहों का भवितव्य यही है
चलते-चलते कुछ दुर्घटना

होता है मन के वीरानों में
भीड़ का जमघट भीड़ से छँटना

राम करे दुश्मन भी न देखे
मन के किसी आकाश का फटना

□□

□□

लो फिर से
घेर-घेर लाएगा कल
अंतरंग चिंतन के विषपायी पल

खौलते पसीने से लथ-पथ है
अपना युग-बोध
और छटपटाता है

साँसें—ज्यों हो रकम उधार की
ब्याज दिए जाता है
रेशम सी काया पर
धारे वल्कल

कितना आकस्मिक है
स्मृतियों का वर्तमान जीना
बिना काल-खण्डों का अतिक्रमण किए
कुछ दशाब्दि
वर्ष
मास
पीना
तैरना हवाओं में
चलना पैदल

□□

□□

जितनी उठी चिनाई
उतनी तड़क गईं मीनारें
कब तक भरें दरारें

सब के अपने तौर-तरीके
अपना-अपना दुखड़ा
किरच-किरच हाथों के दरपन
टुकड़े-टुकड़े मुखड़ा
और साथ चलती हैं हरदम
कुछ अदृश्य दीवारें

जितना चंदन लीपो
उतनी ही सड़ांध उठती है
दुर्गंधित प्रमाण-पत्रों की
फसलें उग आती हैं
जाने कितनी भूखी है
जीवन की सोन-चिरैया
जितने स्वेद-बीज बोते हैं
सारे चुग जाती है
खाक हुई ऊँचे सपनों की
बौनी-बड़ी कतारें

□□

□□

चला आरंभ से
कुछ खेल ऐसा अटपटा सा
न शह की गोट बढ़ती हूँ
न मुझे मात लगती है
न अपनी हार होती है
न अपनी जीत लगती है

मुखौटों का कवच ओढ़े हुए हैं
विविध-वर्णी सहज संबंध सारे
विवशता में बँधे से चल रहे हैं
निकटवर्ती मधुर अनुबंध सारे
चहकती बात
रूपांतर सरीखी
महकती भूमिका पहले कहीं अभिनीत लगती है

कई संदर्भ ऐसे हैं कि जिनको
कोई अध्याय अपनाता नहीं है
हृदय से मान्यता मिलती निरंतर
हृदय का न्याय अपनाता नहीं है
अनूठे अनलिखे
इन आँकड़ों में
बताओ कौन सी संख्या अपेक्षातीत लगती हैं

प्रतीक्षा के लिए क्यों मीत खोजें
निवेदन के लिए क्यों गीत गाएँ
समय के साथ जैसे उग गए हम
वयस के साथ ही क्यों बीत जाएँ
करुण वातावरण के आवरण में
मधुर अनुभूति भी हारा-थका संगीत लगती है

□□

□□

लाखों बार हृदय रोया है
जिनकी पीर समझकर अपनी
उन खंडित प्रतिमाओं को ही
मेरे गीत
समर्पित सारे

इन्दु कौशिक

सुनती हूँ हर रोज कि दुनिया
आज बहुत संत्रस्त हुई है
या फिर दुविधा की चाकी में
पिसने की अभ्यस्त हुई है

क्या प्रत्यंचाहीन धनुष को
दे दूँ मैं मानव की संज्ञा
जीवन क्या संधान करेगा
सज जाएँगे कुछ गलियारे,

वे प्रकाश को बाँध रहे हैं
दीप-शिखाओं से रिश्तों में
प्यार यहाँ ऋण सा मिलता है
कुछ शर्तों में कुछ किस्तों में

मैंने भर-भर हाथ लुटाया
मेरा कोष न अब तक रीता
फिर भी दुनिया कर लेती है
सुविधा के कुत्सित बँटवारे

□□

□□

कुछ कभी न मिल पाए तो क्या है
मिलने की कामना सही
कृत्रिम बैसाखी का आश्रय ले
थोड़ी सी राह घट गई

धरती पर बिछ गया बिछौना सा
छल की सामर्थ्य का खिलौना सा

जाने किस पल पिंजरे का वासी
भागेगा उठकर मृगछौना सा
सपनों के शीशमहल की चौखट
शायद जड़ से उखट गई

तन के संदर्भ कुछ अकूते से
मन के अध्याय से अछूते से
संशोधन—शंकाकुल नयनों का
परिमार्जन—केवल बल-बूते से
बुद्धि के महोत्सव में, भावों की
भाषा बिल्कुल पलट गई

ताँबे को तपा-तपा की चाँदी
चाँदी को पिघला करके सोना
काल—किसी बूढ़े कापालिक सा
जाने क्या करता रहता टोना
परियों की रूप-कथाओं जैसी
जीवन-गाथा उलट गई

काई सी जम गई कगारों पर
सूखे तालाब के किनारों पर
और किसी टूटते मनोबल सी
माटी की साँवली दरारों पर
गेहूँ की सुनहरी फसल जैसी
कटनी थी उम्र, कट गई

□□

□□

जन्म है—विकास का पुनश्चरण
जीवन—निर्माण चेतना
आओ हम मृत्युंजय बन जाएँ
खुद को तैयार करें
हर पल विषपान के लिए

इम्पोर्टेड लैंसों से क्यों नापें
हम अपनी धरती को
आँगन, घर, द्वार को

अपनी ही आँखों से देख लें भविष्य की
घुमड़ती घटा में गहराए अँधियार को
जानेवाले कल की भूलें
इतिहास हों
हम नया प्रबंध-काव्य लिख जाएँ
विश्व प्रतिष्ठान के लिए
क्यों ढोएँ अपना अस्तित्व
निबल काँधों पर
और कसमसाएँ क्यों
फिर अपनी खीझ पर

क्यों न हम भविष्यत् की
आरती उजास लें
समय की विशाल और व्यापक दहलीज पर
आनेवाले कल के
लांछन से बचने को
हम ज्वलंत अग्नि-कुंड बन दहकें
एक अनुष्ठान के लिए

नीची आँखें करके जीना भी क्या जीना
क्यों न विजय-गर्व बनें हम
इन उलटे-सीधे त्यौहारों के बीच
कोई पर्व बनें हम
एक नई लीक
जमाने से हट डालें
अपनी पहचान के लिए

□□

□□

आओ अब अधरों पर नई धुन सजाएँ
इस जलते मौसम की
आँखों में धूल भरें
ऊँघती दिशाओं में सीटियाँ बजाएँ
थेगली लगे हुए
बिछावन भी छोटे
फिर कैसे ओढ़ें हम
रेशमी मुखौटे

आवश्यकताओं भर साथ का
धन्यवाद औरों को दें
फिर अपनी पीठ थपथपाएँ

फटे कवर वाली
हर जीवन की फाइल पर
सूखे पंजों वाले
गिद्धों के हस्ताक्षर
क्या हम धँसती आँखों से
रिसता खून पिएँ
आवेदन-पत्रों पर जमी
धूल खाएँ

□□

□□

शब्दों के आस-पास मत भटको
अर्थों के आर-पार मत झाँको
इन सबसे अलग
कोई अनगाहा गीत है
वह केवल मेरा है

सब कुछ कह देने पर भी
कुछ रह जाता है
जो केवल मन से
महसूस किया जाता है
बाहर के मौसम से
भीतर की ठिठुरन को

जोड़ती हवाओं का अनदेखा खाता है
वाणी की जिह्वा पर
जमता जो शीत है
वह केवल मेरा है

तिल-तिल कर ढह सकना
संभव है
गल-गल कर बह सकना
संभव है
मुट्ठी भर धूल झोंक देने पर
आँखों की जो हालत
होती है
क्या उसको कह सकना संभव है
पीड़ा की किस्मों में
जो व्याख्यातीत है
वह केवल मेरा है

जब तक ये व्याप्तियाँ अधूरी हैं
सबकी सब प्राप्तियाँ अधूरी हैं
मन का हर आंदोलन
मन में ही लीन है
अनुवादित साक्षियाँ अधूरी हैं
दोहन से मंथन तक
जो भी निर्णीत है
वह केवल मेरा है

□□

□□

ऊब उग आती है पहचान के खलिहानों में
गड़ के रह जाती हैं नजरें कहीं वीरानों में

धूप बिफरी हुई बछिया की तरह भाग गई
घुप्प अँधियारा परसने को है दालानों में

भीड़ के रेले उगलते हुए दफ्तर के किवाड़
जैसे सैलाब उमड़ आया है मैदानों में

ये मेरी मैं, वो तेरा तू, ये चलन दुनिया का
बाँट देता है मेरे मन को कई खानों में

जितना खुरचोगे गहरती ही चली जाएँगी
हम उकेरेंगे इबारत यहाँ चट्टानों में

क्या पता लौटे न लौटे मेरा मन आवारा
फँस गया होगा कहीं रेत के तूफानों में

कब्र असली तो कहीं और बनी है साथी
हम जमींदोज हैं इस ताज के तहखानों में

□□

□□

यदि जमाने में घर नहीं होते
आदमी दर-ब-दर नहीं होते

सिर्फ अपनी शनाख्त करने को
लम्बे-लम्बे सफर नहीं होते

जिनका मन अंतरिक्ष होता है
उन परिंदों के पर नहीं होते

रूह जिनमें निवास करती है
गाँव, कस्बे, नगर नहीं होते

पहले बसते थे सिर्फ जंगल में
अब दरिंदे किधर नहीं होते

वक्त का तर्जुमान होते हैं
अपने स्वर सिर्फ स्वर नहीं होते

स्नेह का घर विचित्र होता है
इसमें दीवार-ओ-दर नहीं होते

□□

□□

कितनी उमस है उपवन-उपवन
सारे सुमन हैं उन्मन-उन्मन

आँख लगी हैं बादल-बादल
आग बिछी है आँगन-आँगन

लिख-लिख बाँचूँ कितने उत्तर
प्रश्न टँगे हैं चितवन-चितवन

तैर उठा मन आँसू-आँसू
डूब रहा मन धड़कन-धड़कन

अनदेखा गुमनाम रफूगर
जोड़ रहा है कतरन-कतरन

□□

□□

कदम-कदम पर बोए कतरे खून के
कब फूलेगी क्यार, फलेंगे यार
निवाले दोनों जून के

महल-दुमहले और अटरिया
सर पर ढो डाली
फिर भी अपनी एक झोंपड़ी
खाली की खाली
हम क्या जानें दुनिया के ऊँचे व्यवहार को
हमको मिलता काम, कमाई ठेकेदार को
दाने-दाने को तरसे हैं
पुतले चून के

सोना-रूपा-सी लजवंती तेरी घर वाली
ऊपर से नमकीन सलोनी गज्जू की साली
जलती धरती,जलता अंबर, जलती गरम हवा
हड्डी फोड़ पसीना निकले, किसको चले पता
ऊपर से दुनिया की नजरें
धर दें भून के

जिन सड़कों के पत्थर अपने हाथों से तोड़े
उन पर आज दौड़ते हैं ये लोहे के घोड़े
गई सर्र से कार छोड़ कीचड़ की पिचकारी
आज बहुत फटकारेगी झुनिया की महतारी
अकड़-अकड़ चलते हैं
बेटे अफलातून के

□□

इन्दु जैन



जन्मतिथि

५ अगस्त, १९३५ (नई दिल्ली)

शिक्षा

एम० ए० (हिन्दी)

साहित्य

चौंसठ कविताएँ।

प्रकाशनाधीन :

'आँख से भी छोटी चिड़िया'

'मैं चमन में चाहे जहाँ रहूँ'

कार्य

इंद्रप्रस्थ कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के हिंदी विभाग में प्राध्यापिका।

विशेष

रचनाओं के देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद। आकाशवाणी, दूरदर्शन व हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी तथा अन्य कई भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में बहुविध प्रकाशित और प्रसारित सम्मानित लेखिका।

पता

एफ-१८ पश्चिमी निजामुद्दीन
नई दिल्ली-११००१३

अपने बारे में—अपनी रचना के बारे में कुछ कहना जितना लोभप्रद है उतना ही कठिन भी। विशेष रूप से मुझ जैसे व्यक्ति के लिए जो अपनी सिर्फ एक धारणा को सही मानता हो कि—कोई धारणा सही नहीं होती। 'अति' जीनियस की पहचान है और अद्वितीयता का मूलमंत्र। लेकिन स्याद्वादी तर्क में पड़ा हैमलेटी मन उलझाव बनकर रह जाता है—या शायद, यही एकमात्र सपाट सत्य हो।

कविता और कवि में, कभी-कभी लगता है जैसे घोड़े और सवार का-सा संबंध है। शुरू में घोड़े के मनमुताबिक भागती थी और जहाँ वह ठिठकता था—मैं भी थमी रह जाती थी। अब धीरे-धीरे सवारी करना सीख रही हूँ। थपकी और एड़ से उसे मोड़ने की कोशिश करती हूँ—ऊपर-नीचे चढ़ती-उतरती हूँ और अक्सर मुँह के बल भी जा पड़ती हूँ। पहला अक्षर रचते ही कविता रास तुड़ाना चाहती है लेकिन मन में हंटर उग आता है जिसकी चोट कभी मुझ पर, कभी कविता पर पड़ती है।

बहुत पत्थर हैं—नोकीलों के साथ-साथ रपटने काईदार, झाड़झंखाड़,

'ऊर्ध्वा चुभीली घास, ऊँचे ऊदे छतनार पेड़ों के बीच काले जल की तलैया', धूल-मिट्टी, रेगिस्तान और अ-रोमांटिक प्यास। शर्मिंदगी का अघट घट—'नपुंसक दाँत किटकिटाता'—वहीं का वहीं रुका हुआ वनमानुष। फिर भी परत-दर-परत 'खुद' को, 'उस' को, सबको बेरहमी से उधेड़ते चले जाना और इस प्रक्रिया में युग को खुद और खुद को इतिहास बना डालना—कविता कुछ और है क्या ? और कवि भी क्या ?

—इन्दु जैन

□□

आ, शब्द की उल्का आ
वाहन बना
अग्नि-तीर सा अर्थ
—बेध जा

एक बार फूल
फिर किसी तरह
अपार आकांक्षाओं का द्वार
ठेस से ठेल भर जा
आ

फिर मेरे हाथ की वल्गा बन ··
ओ विद्युत्कांत
फिर यश का प्रभातप हो जा···
अंतः झरोखे
कृति-पिता
शब्द
आँख सा खुल
आकाशपूर छा
□□

□□

मोहरा नहीं है मेरे पास
कि मुट्ठी में छिपा लूँ
जीभ तले दबा लूँ
अंगारों पर चलती चलूँ
तभी तो
सामान्यों में सामान्य ही रहूँगी
हातिमताई नहीं हूँगी

पहेलियों से कतराती
डूबती नहीं
तैरती—
सतही रहती हूँ

एकमात्र जीवनार्थी विष से सहमी
जड़ रासायनिक शर्बत पीती हूँ…

अकेलेपन का अहसास
बड़े से बड़े को
तुच्छ बना जाता है
किंतु
भीड़ में आते ही
व्यक्तित्व लहर सा डूब जाता है

कीच प्राणदायी हो जाए तो
कमल हूँ मैं
नहीं तो सेवार और काई
दूसरे को फिसलाती फिसल जाऊँ
या ऊर्ध्वगामी सुगंध की लहरी सी उठूँ

उसी पर निर्भर है सब
उसी पर
मोहरे पर
भीतर फूटते अंकुर पर
हथेली में दबा भी नहीं है
जीभ में पला भी नहीं है
कतरा है मेरा
मेरा कदम
जो एक एक सीढ़ी पर चलता
छत पर चढ़ा है

□□

□□

नारी अपने आकार से त्रस्त है
देह के फूल में खुशबू सी ग्रस्त है
कितना भयंकर है रेखा में
दिल दिमाग बँधना

जब तक यह जानकी विदेह नहीं होती
मिट्टी में जल सी सरसती
नया बीज नहीं बोती
रूप की कैद से हवा नहीं होती

देवी,दासी,प्रेयसी
हर एक स्व से पस्त है
देह के फूल में खुशबू सी ग्रस्त है
नारी अपने आकार से त्रस्त है

□□

□□

अचानक भीड़ में खड़े-खड़े
मुझमें सूरज की तीखी किरणें चुभ जाती हैं
और समुद्र थपेड़े लेने लगता है
बादलों के झुंड के झुंड बालों पर
आँखों पर
उतराते हैं

दोनों हथेलियों से उन्हें इधर-उधर हटाती
ऊँचे-नीचे पहाड़ों पर भटकने लगती हूँ
और
अँजुरी भर सूर्य के ताल में डुबकियाँ लेती हूँ
क्रोध की लहरों सी भीड़
मेरे इर्द-गिर्द टकराती है
लेकिन फिसलनी घास के ढलाव वाली
चौड़ी और समतल चट्टान की तरह
मैं निश्चल मुस्कराती हूँ

मेरी आँखें भीतर चली जाती हैं
चि उँ टाऽऽ करके एक चीज भीतर से
नोकीले पंखों पर संतुलित गति
बाहर उड़ जाती है

लंबी घाटियों और फूलों के फेनीले बहावों पर
सरसराते, घास के बड़े बेतरतीब बालों पर
घूमती, मँडराती है
चकाचौंध होकर
नम कर, नहाकर
जन्ना कर थमे हुए सिक्के से चाँद पर
उतरती है···

मेरे किनारों की कगारें उठ आईं
और गहरा हो गया बंदीगृह मेरा
और मैं
धुएँ से, स्पर्श से कट गई

और मुझे घेर गया
मन के चीत्कार का पहरा
कंकर सा उछल गया प्रश्न उस ताल में
शब्दहीन कोहरे में और कुछ धँस गई—

भागती-फिसलती किरणों की नदियों पर
पाँव बिना धरे
कहीं की कहीं बह जाऊँ
पेड़ों की छाल पर नाम बन खुदूँ
वर्षा के आते ही
थक्के के थक्के काई सी उगूँ—
नाम ढक दूँ—
रेतीले तट पर पैर की छाप सी पडूँ
सीपियों के साथ-साथ बहूँ

क्षण का शतांश बीत जाने पर
भीड़ में लौट आती हूँ
वहीं छूट जाता है सारा अनुभूति-बोध
एक छाया पैरों को उठाती है—
अगले शतांश ही
मोहाच्छन्न
खुशी-खुशी
भीड़ में मिल जाती है

□□

□□

बहुत घनी बेतरतीब ऊर्ध्वा चुभीली घास
ऊँचे-ऊँचे छतनार पेड़ों के बीच
काले जल की तलैया
अपारदर्शी,मत्स्यहीन—

उसमें बस पड़ती है मेरी परछाईं
और कोई मुख नहीं दिखता
सेवार नहीं हिलता
वैसे किसी ने कभी झाँका ही कहाँ है
जब गहराती है रात—
वहाँ कोई नहीं आता
और दिन में हर एक व्यस्त है
ऑफिस में, सड़क पर
सिनेमा में, प्रेम में

इसलिए एक ही अक्स उतरता है
जिंदगी का सारा भयावहपन
उसी अँधेरे सूने में लहरता है
आसपास कभी- कभी फूल भी खिलते हैं—
लहरदार चितकबरे नामहीन
यदा कदा साँप सरसराते गुजर जाते हैं
या फिर चिड़ियों के अंडे फूट जाते हैं

किसी-किसी क्षण में दिख जाता है
जिह्वा के नीचे का घाव
जो सत्य का मंत्र बन
मुझे यहाँ डाल गया—

और वो गँठीली अँगुलियों का हाथ
जो बाहर निकलने के मार्ग पर
काँटे बिछा गया

उलटे और सीधे
बेहिसाब नागफन उग आया

किस कदर राहत है गंदे गढ़े में
अनगिनत मच्छरों के जाल में—
एक बार स्वीकार भर करना था
फिर तो हर माप ही निरर्थक
हर बेचैनी अकारथ है

□□

□□

जब मेरे आँगन के आम पर नींबू
और नींबू पर भी नींबू उगे
मैंने खुश होकर कहा—
चलो अच्छा हुआ
दोनों साथ-साथ पले
समभाव बढ़े

माना कि आम नहीं मिले
फूल नहीं खिले
ककड़ी-खरबूजे की बेल पर
कद्दू ही फले

लेकिन हर चीज का अपना मोल है—

अपने तो भैया, शांति से रहते हैं
रोज साग से भोजन करते हैं

(देखो, सारे भले जानवर घास चरते हैं !)
मीठे के लिए
कौन माथा मारे
धरती गोड़े
पौधे रोपे
खाद, जल डाले

चारों तरफ छाया कैसा स्वराज है
अपने हाथ फल, अपने हाथ काज है
(मित्रों की कोठार में नाज है)
अच्छे-अच्छे बचन हैं सुनने को
सारे मुख दरपन हैं
गुन-औगुन गुनने को

□□

□□

चुंबन खलल है दिमाग का
चाँटा भी
वर्ना क्या आता जाता है
होंठ या हथेली की चटकन से
हार-जीत भूल कर ही
बेखौफ सोता है मन
मौत के बाद क्या फर्क पड़ता है

□□

□□

बस में लटकती
बगलों से उठती पसीने की
प्राणदायी झल सुगंध

सूखी बाँहों पर ऊदी धमनियाँ
तेजी से
उभरी गरीबी संचारती
काले भविष्य की जिल्द में
मटमैले दुहराए तिहराए हजाराए पन्ने भरे
मरी चुन्नी के चबाए छोरों से बँधी
वक्ष जंघा नितंब-लोक में
कुहनियों की नोंक पर सधी
यौन की खनकती घंटी
छात्रा है मेरी

कुछ यादों का अतीत नहीं होता—
उसी तरह वेश्यालय आकर घेर लेते हैं मुझे
चीकट बिस्तरों पर
सिगरेट के टोंटे
मैली एड़ियों के निशान
घेर लेते हैं
दुर्गंध से

डाक्टरों पर से विश्वास उठ गया है
देखते नहीं
मुझे ही गोदने होंगे अपने घाव
गहरे और गहरे
कुरेदने होंगे
हर घाव के कटोरे में उँडेलना होगा
खालिस तेजाब
पट्टी के नीचे कुछ भी छुपाना पाप है—

मक्खियाँ लपकती हैं मेरी तरफ
यह एक और तरह का कष्टस्राव है
मक्खियों का इंतजार और
लाइलाज बचाव
यह एक और तरह का कष्टस्राव है

यह एक उसी तरह की याद है
जो बिना अतीत के आती है
जो गर्दन तोड़ कर मुझे
बस में लटका जाती है

□□

□□

करवट बदलकर सोने वाले ए बेखबर
मैं प्रेम कविता लिखती हूँ
काश ! मैं किसी और की विवाहिता होती
ताकि तुझसे भरपूर प्यार कर सकती

इन्हीं आँखों, इन्हीं होंठों
इन्हीं खुशबूदार बाँहों के लिए छटपटाती
इसी रहस्य का तिलिस्म तोड़ने
एकजुट जादू जगाती

अजीब मुसीबत है यह प्यार
दूर भी खिचती है डोरी
तो पलटकर लौट आने को
कम्बख्त
सात फेरों में नौ जिंदगियाँ लेकर आई है
प्यार की बिलैया
छींका ही टूटा नहीं
हर बार तेरे दरवाजे ही
होती है दस्तक
तू पड़ा सोता है
तेरे प्यार की जात ही अलग है
चिड़िया का बच्चा
जब तक असहाय है
तब तक ही घोंसले में रुकता है

दरअस्ल
प्यार सिर्फ बेवकूफ करता है

□□

□□

कमजोर हाथ
कच्चे काँच में जहर हुआ करे
इन गमगीन रातों को गुजर जाने दे
खड़े कर पहरे स्वर्ग के दरवाजे
माफ कर देंगे—तू भी क्या करे
वर्ना, क्या सारे खदेड़े कुत्ते वहीं भर जाने दे

ताकत हो तुझमें तो
एक और तूफानी सूरज उगा—
फिर आँख खोल सकूँ
रात की उदासी
नर्क की दहकती राख में सो जाने दे

मैं इस बियाबान में आबाद हूँ—
बलवान हूँ
आत्महत्या की सतत संभावना
या निर्विकार चुप्पी, क्या फर्क पड़ता है
अपनी जगह मरने को खरीद ले
मुझे—
जिंदगी दे –
फिर अगर दीवार-पार बागबानी करूँ
तू सिर उतार लेना—
उऋण कर देना
सच पूछ तो जिंदगी से मुझे ही मिला क्या—
सिवा मेरे

पुराने लोग सिर्फ गिद्ध संधाते थे
हम दोनों
तमाम समस्याओं को कंधा लगा
पहाड़ से चट्टान हुंकारते ठेल जाते हैं

सोच-समझ तीर पैनाते
तीनों लोकों में सीढ़ी जमा
निशाने बैठाते
क्या हुआ जो जीवन भर मोमबत्तियाँ बेच
आखिर अँधेरे में सो जाते हैं

कितनी मुश्किल से आदत डाली थी
सराय के धुआँए जालेदार ताकों की
खोखली शहतीरों के नीचे पहली ही रात खर्राटे भरे थे—

कम्बख्त—
तूने पुताई करा दी
मरम्मत लगवाकर
भयावहता की चक्की दुबारा चला दी

इतना कुछ करने को बाकी है—
सो जाने दे
हाँ ! हाँ ! ली थी मैंने सोने के सिक्कों की घूस
और फेंक दी नफरत से घूरे पर
जब नहीं पाई उस पर पुलिस की शिनाख्त-मुहर
तूने भी निराश किया मुझे
काश, मैं भी आखीर में तुझे असंगत कर जाऊँ
याद रखना
अगर मैं जूते गढ़ूँगा
संतति लंगड़ी जन्म लेगी
और
जिस घड़ी पगलाऊँ, बर्राऊँ, मारने को पत्थर उठाऊँगा
मेरी तड़की खोपड़ी की चुप्पी से आश्वस्त
सारी दुनिया
चैन की बंसी बजाएगी
तुझे
सिर्फ तुझे उस हूकती नींद से जूझने
अकेला छोड़ जाएगी

□□

कुसुम अंसल



जन्मतिथि

१ अगस्त, १९४० । अलीगढ़

शिक्षा

एम० ए० (मनोविज्ञान)

साहित्य

मौन के दो पल (कविता)

उदास आँखें, नींव का पत्थर, उसकी पंचवटी (उपन्यास)

विशेष

रंगमंच में रुचि ('इप्टा' के नाटकों में अभिनय), दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लेखिका संगठन 'कामायनी' की संयोजिका। दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं में प्रसारित तथा प्रकाशित।

पता

५७, जोर बाग
नई दिल्ली-११०००३

कविता के लिए अनेकों वक्तव्य तथा लेख लिखे जा चुके हैं, एक मैं...क्या कहूँ ? फूल, इंद्रधनुष या प्रकृति के अन्य सुंदर दृश्यों को परिभाषा की परिधि में बाँधना कठिन है। उन्हें देखकर सराहना की जा सकती है, उन्हें स्नेह किया जा सकता है, ऐसे ही कविता को पढ़कर उसके सौंदर्य में डूबना, उसे स्नेह करना आवश्यक है। मैं भी जाने कब से कविता से प्रेम करती आई हूँ, अपनी भावनाओं को कविता की भाषा में कहती आई हूँ। बहुत बचपन में अपने भाइयों को कविता में पत्र लिखकर भेजा करती थी, उनके कुछ अंश आज भी मेरी अमूल्य निधि हैं...उस भोली अवस्था में कविता की परिभाषा क्या है ? यह जानना जैसे मेरे लिए अनिवार्य नहीं था, आज भी नहीं है। कविता के माध्यम से, है कुछ, मेरे भीतर का जो मैं कहना चाहती हूँ, वही कुछ मेरे अंदर उबलने लगता है और कभी-कभी वह उबाल उफन आता है, और उसे ही मैं लिख बैठती हूँ। वही आत्मअभिव्यक्ति है मेरी कविता—कविता मेरे लिए एक सांत्वना है, मेरा अपनापन है जो शब्दों का सहारा पाकर कागज पर उतर आता है। पहले पहल 'मन का कुछ' एक मानसिक तरल धारा के रूप में उभरता है फिर धीरे-

धीरे यह धारा गति को प्राप्त कर तरंगों में परिवर्तित हो जाती है।

अक्सर कविता लिखते समय यही होता है कि कवि अपने अंतर्मन की चेतना से ही ऊपर नहीं उठता और बाहरी दुनिया में भी अपनेपन का साम्य खोजता है, वहीं से उसे अपनी बात कहने के लिए नयी-नयी सूक्तियाँ या उपनाम मिल जाते हैं। अपनी कविता पाठक के सामने रखकर शायद कवि यह कहना चाहता है कि "लो, मेरा सर्वस्व तुम्हारे सम्मुख है, चाहो तो इस कलात्मक चित्रण की ऊपरी रंगसज्जा की सराहना करो, चाहो तो भीतर के आत्मपीड़न, भीतर के चेतन रूप को पहचान लो।" मुझे तो लगता है कविता और कुछ नहीं अपने पुराने जिए हुए जीवन के छोटे-बड़े पलों का एक 'फ्लैश बैक' है—एक 'पूर्वदीप्ति' है, जहाँ कवि एकाएक जी उठता है और जैसे उन पलों के पुनर्जन्म से वह कुछ सीखना चाहता है, उनका सहारा लेकर कुछ नया सृजन करना चाहता है।

भाषा-शैली, छंदों या दोहों इत्यादि की कोई कँटीली बाड़ मेरा रास्ता नहीं रोकती। मैं हवा के तेज झोंके की तरह उसको फलाँग जाती हूँ। अपनी अभिव्यक्ति का विश्लेषण मुझे विशेष रूप से कठिन लग रहा है, क्योंकि लिखना मेरे लिए व्यवसाय नहीं है, न ही यह मेरी जीविका है—हाँ, मैं इसे अपने जीवन का एक अभिन्न अंग अवश्य मानती हूँ। तो लीजिए, मैं प्रस्तुत हूँ यहाँ, अपनी ही आवाज में गुम अपनी ही प्रतिध्वनि के रूप में—जानती नहीं कविता को पूर्ण रूप से मैंने पाया भी है या नहीं ? मगर रत हूँ सतत प्रयास में कि कविता को पा सकूँ—

—कुसुम अंसल

□□

जिंदगी मेरे साथ
बढ़ती उम्र की सीढ़ियाँ
चढ़ते-चढ़ते
जैसे थक गई

मुड़कर लौटने को
मचलने लगी
उसके पाँव आगे बढ़ने में
काँपने लगे
ठिठुरकर लौटते इस
जीवन के प्रहर को
मैंने चेतना की
बैसाखियाँ थमा दीं
सहारे को पकड़ाकर
उकसाया, मिन्नत की
कि चलो दूर जाना है
उम्र का साथ मत छोड़ो
उसके साथ बढ़ो
सहारा चाहिए तो
मेरी अनुभूतियों
को थाम लो
उसे पूर्णता तक पहुँचाओ
निरंतर बढ़ती जा रही
उम्र की समानांतर रेखाओं
के बीच
फैल जाओ
कहीं उम्र और जीवन का
फासला इतना न बढ़ जाए
कि मेरी उपलब्धियाँ
कहीं बीच में ही

विलुप्त हो जाएँ
और तब तक
दुखों का बारूद
अपनी भयानक गर्जना से
तुम्हें विस्फोट में उड़ा दे
और तब मेरे साथ
केवल उम्र ही चिपक
कर रह जाए...
और जिंदगी का साथ
छूट जाए...
उम्र तो कुछ सालों के
जुड़ते जाने का नाम है
उम्र तो जमा का एक निशान है
उम्र तो बढ़ती हुई थकान है
उम्र के प्रवाह में
बह जाने से क्या होगा
जब अर्थ जीवन का
जिंदगी की पतवार
टूटकर मझधार में
खो जाएगी
जिंदगी, तुम मेरा हाथ
मत छोड़ो...
मैं तुम्हें उम्र के साथ
एकाकार होते
देखना चाहती हूँ
बैसाखियों को गिराकर

उम्र के कंधे पर
हाथ रखकर
चलते देखना चाहती हूँ
जानती हूँ
मान लोगी, मेरी बात
क्योंकि मैं
टूटकर नहीं, जुड़कर
जीना चाहती हूँ

□□

□□

गूँज बनी आवाज
पहाड़ों से टकराकर
लौट आई है

मेरी हथेलियाँ
फैल आती हैं
मैं उसे सहेजना चाहती हूँ

परछाइयाँ, प्रतिध्वनियाँ
झूठ का ही
मार्जित रूप है

सच गूँजता नहीं है
सच गहरे कहीं
मन में पैठ जाता है

लौटकर आती गूँज
नक्कारा बन जाती है
और वह ध्वनि

सबको नहीं
केवल अपने को ही
सुनाई देती है

□□

□□

धरती को तोड़कर
दरारों में विभाजित करते हुए
उगो जीवन के पौधे
इस धरती को

आस्थाओं के खून ने सींचा है
बिखरा है यहाँ
टूटे हुए विश्वासों का जल
पी जाओ, हवाओं से
सारा का सारा जहरीला धुआँ
बढ़ते जाओ, फैलते जाओ
पल्लवित हो, पुष्पित हो
खिले हुए तुम्हारे फूलों का
रंगीला आवरण यदि
मैला हो जाए
तो अजगर बनकर
अवतरित हो जाओ
लील जाओ फिर से
सारी अच्छाइयाँ
क्योंकि इस धरती पर
सीधे-सादे रास्तों पर चलकर
तुम किसी भी मंजिल तक
पहुँच नहीं पाओगे
टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ ही
तुम्हारे पैरों के नीचे बिछी हैं
उन्हीं पर साँप की तरह
रेंग जाओ,
दंशित करो हर किसी को
जहर जितना फैला सको
फैलाओ...
अमृत कितनों के बाँट आएगा

अमृत तुम्हें भी कहाँ मिलेगा
अमृत की कल्पना झूठ है
जहर शाश्वत है
जहर का रंग गहरा है
जहर का असर
उतरता नहीं है
जहर ही पीकर जिए हो
जहर ही नसों में बहा है
जहर ही अमृत है
तुम भी हर आने जाने वाले को
अँजुली भर-भर
इस अमृत का दान दो
इसे पीकर कोई मरेगा भी नहीं
क्योंकि
सच तो यह है कि—
विभाजित धरती, और
चटकती दरारों से जन्म लेकर
और कोई दे भी क्या सकता है

□□

□□

संयम की सीमाओं को ओढ़कर
तुम मनुष्यता से दूर जा रहे हो
तुम भूल रहे हो कि जीवन तो
हर भूल, भोग और व्यथा का नाम है
शायद तुम अकारण ही जन्मे हो
तुम साधु हो--

तुम्हारे लिए अध्यात्म है, त्याग है
मैं तो साधारण हूँ
मैं नारी हूँ
मेरे लिए पदार्थ है, प्रेम है
तुम जीवन से ऊपर उठने की बात कहते हो
मैं जीवन के भीतर ही गुम होना चाहती हूँ
तुम चाहते हो, मैं आत्मसात कर लूँ
उन कुछ नियमों को
जो भगवान के निकट ले जाते हैं
मैं उसे अपने बीच आई
व्यर्थता जान
दूर ही रहना चाहती हूँ
दो दूर ध्रुवों की ही तरह
मेरे तुम्हारे विचार
फैलकर विशाल विस्तार में
बिखर गए हैं
फिर भी हम साथ रहते हैं
शायद अप्रसन्न भी नहीं हैं
चुंबक के दो विपरीत छोरों की तरह
कभी जुड़ भी जाते हैं
और फिर जैसे जुड़ना नहीं चाहते
बँधना नहीं चाहते
क्योंकि हमारा एक दूसरे से विपरीत होना
एक बहुत बड़ा सत्य है

□□

□□

कही-सुनी बातें
ढुलकती हुई रोशनी की
रेशमी नदियों को
मुट्ठी में पकड़ लेने दो मुझे

विश्वास कर पाने लायक
तैयार करके बुलबुलों की सतह
सच को झूठ कर लेने दो मुझे
सीखना बहुत है जमाने से
तुम ही कहो, क्या कहूँ
बात, बता लेने दो मुझे
बहुत चाहा था छुपे
रहस्य बन जाए, बीता जीवन
पर अब हँसकर
कोई किस्सा, छोटी सी उस बात का
बना लेने दो मुझे
चलो आज समंदर की
लहरों को पी जाएँ
डूबते हुए अरमानों के शव
किसी तरह बच जाएँ
गीले हुए सारे के सारे कफन
सुखाकर तहा लेने दो मुझे
छोड़ दो मेरे आँचल का कोना
दूर कहीं डूबता सूरज
लाल अंगारों में लिपट
जाने किस खोज में जा रहा है
यहाँ का सुख तुम थामो
मुझे उस पार जाना है
कौन सा लोक है वहाँ देख आने दो मुझे

□□

□□

एक नीली सुबह
पेड़ों की परछाइयों से गुजरती
मेरी देहरी पर झुक आई है
अनसोई रात कुम्हलाकर
कमरे के भीतर
अभी तक नींद की प्रतीक्षा में है
पर अब उसे जाना होगा
नींद नहीं लौटेगी

जो अन्तर्द्वंद्व का कोहरा
आँखों से बरसकर
रात को, पूरी रात
धोता रहा है
वह अब भी
बिस्तरे की अनगिनत सलवटों में
बिखरा हुआ है
उसे न जाने क्यों
यह विदा लेती रात
साथ नहीं ले जा रही
मैं भी नीली सुबह की तरह
यादों की परछाइयों से
गुजरना चाहती हूँ
कि किसी भी तरह
सुबह का यह नीलापन
जब सुनहरी बन जाए
तो मेरे मन में भी
तुम्हारे विश्वास की
एक नन्ही किरण
धीमे से उग आए
और बाहर का फैला प्रकाश
मेरी आत्मा में उतर जाए

□□

□□

किस पैमाने से नापूँ
तुझे ऐ जिंदगी
'इंचों' में या
'सेंटीमीटरों' में

हिसाब जोड़ूँ
कौन से आधुनिक
'कैलक्यूलेटर' पर
किस जगह कब रुकी
किस जगह कब चली
कौन सी सीमा को
छूना चाहा था तुमने
कैसे जानूँ
भटकने के नाम पर
लिखा मिला था मुझे
तुम्हारा हिसाब का 'लैजर'
सुख दुख के जोड़, भाग
गलत ही तो सिद्ध हुए
जहाँ भरना था सुख
दुख वहाँ भरा मिला

अनगिनत स्थानों पर
सुख की जगह पर
दुख की एंट्री कर गए हो
तभी तो
सब कुछ अव्यवस्थित
असंतुलित होकर
बिखर गया है
जोड़ा नहीं जा सकता
केवल एक
लाल पेंसिल से उस पर

प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है
उस बड़े लाल
प्रश्नचिह्न के आस पास ही
सीमित रहना होगा
शायद जीवन की यही नियति है

□□

□□

मैं फैले हुए नीले आकाश की तरह
इस निस्सीम शून्य में बिखर गई हूँ
अगणित तारों की तरह, मेरे स्वप्न
कभी चमक जाते थे
कभी टूट जाते हैं

मुझे समेटने की कोशिश मत करो
मुझें पुकारने की कोशिश मत करो
ये बादल कभी कोई बाँध पाया है क्या
मुझे उमड़ने दो
मुझे घुमड़ने दो
क्योंकि मैं बरसते-बरसते रीत जाना चाहती हूँ
अपनी बाँहें फैलाकर कितनी बार
सागर के विशाल वक्ष पर टिकी हूँ
लहराई हूँ
तूफानों में बँधी हूँ
यहीं ज्वार के साथ उबल जाने दो
यहीं कूलों पर सर पटकने दो
क्योंकि मैं एक अतृप्त प्यास हूँ
□□

□□

काले, उमड़ते, घुमड़ते
अँधेरों
तुम लौट जाओ
यहाँ भीतर नहीं आना
यहाँ पर मैंने
अपने मन की इच्छाओं को
जगाकर
प्रकाश किया है

खोजना है मुझे
जीवन क्या है
और जीवन क्यों जिए जाते हैं
तुम लौट जाओ
यहाँ अँधेरों का काम नहीं
जीवन तो उजाला है
धूप की तरह खिलता है
जीने को उकसाता है
और खुशियों से लाद जाता है
जीवन जगमग प्रकाश है

तुम लौट जाओ
यहाँ अपने मन की
दुविधाओं का धुआँ
इतना भर आया है
कि तुम्हें आने नहीं देगा
यदि आ भी गए
तो तुम्हारा अपना सर्वस्व
यहाँ खो-सा जाएगा
ये धुएँ तुम पर
हावी हो जाएँगे
और जीवन
काले प्रेत की तरह
तुममें लीन हो जाएगा

तुम लौट जाओ
क्योंकि जीवन

तुमसे परे
कुछ भी नहीं है
कभी कभी ही तो
यह जीवन
प्रकाश में अवतरित होता है
अधिकतर तो
तुम सा ही बनकर
उमड़ता है, घुमड़ता है
बरसता है

आँसू बनकर
टपकते मोतियों से
किसी के भी तन पर
जीवन का नाम
लिख जाता है
तुम लौट जाओ
यहाँ भीतर नहीं आना
यहाँ भीतर और कुछ नहीं
तुम ही तुम हो
जीवन तो अँधेरों में
भटकने का एक नाम है

□□

□□

अवरोध भरा पड़ा है
गति के स्थान पर
चलने को उठे पाँव
चलते भी हैं तो
जीवन की सड़क के
चौराहे पर
दप् से लाल बत्ती
जल जाती है
और तब रुकना होता है

आकाश में उड़ पाने की साध
अनगिनत मिट्टी की परतों
के नीचे
दब गई है
विस्फोट की प्रतीक्षा में
मन में उबलते
अरमानों को
उजागर किए जा रही है
विस्फोट होगा कभी
टूटे हुए सपनों
का लावा बहेगा
और झूठे विश्वासों की
चट्टानों से टकराकर
वहीं कहीं रुककर
सड़ने लगेगा
गति के टूटे पंख
उसी दलदल में धँस जाएँगे
और जीवन एक दुर्गंध की तरह
वहाँ से उठकर
पुनः चौराहे पर जलती
लालबत्ती के निकट
खड़ा हो जाएगा

□□

□□

नहीं चाहिए मुझे सहारा
क्योंकि—
तुम्हारे फैले हुए हाथ
मुझे ठूँठ मालूम होते हैं
उनकी सहानुभूति झूठी है
बैसाखियाँ या सीढ़ियाँ
मुझे नहीं चढ़नी

मैं हवाओं में
कल्पना के रंगीन
पंख लगा उड़ सकती हूँ
मेरे आगे उगे
लकीरों के जंगल
और प्रश्नचिह्नों से
मत उलझो
उन्हें खींचकर
सीधा
मत करो
क्योंकि मैं
उलझनों से
आश्वस्त हूँ
कुछ भी बनाने का
स्वप्न मत दिखाओ
मुझे मैं, जो हूँ
वही रहने दो
मंदिर की गंदी नाली से
बहता आया गंगाजल
जैसा भी पवित्र हो
मेरे लिए
वह केवल कीचड़ है
तुम पियो उसे
चुल्लू भर-भर
मेरी प्यास
उससे नहीं बुझेगी

पान करनी है
वह मदिरा
जो मुझे
छलावे के संसार से
ऊपर उठाकर
ले जाए वहाँ
जहाँ बेशक
दुख तो हों
पर सच्चाई हो

कड़वी मदिरा
ढोंग के गंगाजल से
कहीं अधिक पवित्र है

□□

चन्द्ररेखा सिंह



जन्मतिथि

१४ अगस्त, १६३६। गाजीपुर (उ० प्र०)

शिक्षा

बी० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, सरस्वती

साहित्य

वन्दनी के गीत (कविता)

विशेष

प्रकाशन और प्रसिद्धि से प्रायः दूर रहती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी छपती हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण होता रहता है। कवि-सम्मेलनों के मंच पर भी यदा-कदा दिखाई देती हैं।

पता

१४८, लक्ष्मण गंज
झाँसी

गीत-लेखन इतनी अल्पायु से प्रारंभ किया, जब अधिकतर उसके लोग 'लिखना' भर सीख रहे होते थे।

वस्तुतः गीत मेरी दुर्बलता है। जब यह अनुभव होता है कि बिना लिखे और कोई चारा नहीं—तब अपनी भावनाओं को शब्दबद्ध करती हूँ। जिसकी अंतिम परिणति गीत होती है।

वह स्थिति अब नहीं रही कि गीत की उपयोगिता पर कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत हो। मेरी समझ में गीत की उपयोगिता जिस सीमा तक आज के मशीन-युग में है उतनी पहले कभी रही नहीं। क्योंकि आज महाकाव्यों-जैसी महान कृतियों को पढ़ने का अवकाश एवं धैर्य केवल कुछ 'वर्ग' को ही है। 'जन-साधारण' से लेकर 'असाधारण' का भी एक बड़ा वर्ग 'कम-से-कम' में 'अधिक-से-अधिक' पाना चाहता है। निश्चय ही यह मनोवृत्ति मशीन-युग की ही देन है। ऐसी स्थिति में गीत की विधा ही कसौटी पर खरी उतरती है।

वह जो केवल मन को छुए ही नहीं—चुभे भी, वह जिसका अंत केवल तुममें ही नहीं, सात्त्विक आनंद में भी है, मैं गीत का एक छोर-भर मानती हूँ। गीत का आँचल विस्तृत है।

वह जो सदियों से चले आ रहे प्रतीकों को उन्हीं चश्मों के माध्यम से देखे—जो उस समय दृष्टि-सामर्थ्य मापकर बनाए गए हों—गीत का जर्जर प्रदर्शन-मात्र है। समर्थ गीत वही है जो नये परिवेश के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए युग को नया बोध व नयी दृष्टि दे। और यह गीत का वह छोर है जिससे उसे सत्य, हित सहित संपूर्णता प्राप्त होती है।

—चन्द्ररेखा सिंह

□□

युग बाद खुले जो नयन
उठे कर वरद, और क्या माँगूँ
तुम तो बस मेरे गीतों को ही
श्राप-मुक्त कर दो

किरण-दुकूल दिवस ने खींचा,
साँझ हुई निर्वसना
मधुघट रीत गया यामा का—
चुकी न तम की तृष्णा

कोटि दीप निष्प्रभ अम्बर के
एक दीप के आगे
संभव हो तो हृदय-दीप ही
स्नेह सिक्त कर दो

प्रतिपल का ले रंग समय ने,
अनगिन चित्र बनाए
पर कैसा संयोग ! नियति के—
मन को एक न भाए

अपनी ही आँखों को अपने—
सपने लगे चिढ़ाने
अब इनका भ्रम हरो, दृष्टि का—
पथ प्रशस्त कर दो

तुम तो बस मेरे गीतों को ही
श्राप-मुक्त कर दो

□□

□□

प्रीति को दृष्टि दो—
गीतमय सृष्टि हो
तब समझ लूँ कि मुझसे तुम्हें प्यार है

दर्द कितना मधुर पा जिसे जन्म के
पतझरों में बहारें भटकने लगीं
तुम मिले क्या, मिला बाग को बागवाँ
फूल तो फूल माटी महकने लगी

पर मुझे यूँ लगा आज प्यासी धरा
ओस पी बन सकेगी नहीं उर्वरा

मेघ बन धार दो
मुक्त श्रृंगार दो
तब समझ लूँ कि मुझसे तुम्हें प्यार है

जिस जगह पर तुम्हारे चरण रुक गए—
गतिमयी बन गई साँस मेरी वहाँ
स्नेह चुकने लगा जब तुम्हारा तभी—
ज्योतिमय हो जली आस मेरी वहाँ

किंतु युग का तिमिर कह गया मुस्करा
जुगनुओं से प्रकाशित हुई कब धरा

ज्वाल जग की वरो
ज्योति अक्षय करो
तब समझ लूँ कि मुझसे तुम्हें प्यार है

चिर पिपासित खड़ी द्वार पर भीड़ है,
एक मुझको मिली तृप्ति तो क्या हुआ
हर नजर कैद है स्वप्न के गाँव में
एक मुझको मिली मुक्ति तो क्या हुआ

रैन मधुमय करो तृप्ति हो हर सहर
दो नई रोशनी मुक्त हो हर नजर

बाँट लो हर व्यथा
पूर्ण कर दो कथा
तब समझ लूँ कि मुझसे तुम्हें प्यार है

□□

□□

तुम न रूठो, जगत रूठ जाए भले

स्नेह छल
स्नेह-बल
दे गया एक पल

दान अमरत्व का मृत्यु की छाँह में
प्राण जिसके लिए
हर किसी के विकल

मुक्ति की
शक्ति की
निधि लुटे ना, स्वयं लूट जाए भले
तुम न रूठो

एक मग—
एक पग—
स्वप्न ले चिर सजग
नाप ले व्योम-तल बाँध पर में क्षितिज
नीड़ तक लौट आ
पथ न भूले विहग

अंत तक
हो अथक
प्रण न छूटे परिधि छूट जाए भले
तुम न रूठो

हो प्रलय
कौन भय
जो रहो तुम सदय
क्यों न हो देह जर्जर, मगर प्यार का
एक धागा—कि
जिसमें बँधा यह हृदय

विश्वजित
स्नेहसित
वह न टूटे कि दम टूट जाए भले
तुम न रूठो

□□

□□

चाँद मेरी बाँहों में
गोदी में सूरज है
आँखों में फूल और
साँसों में मलयज है

चाहो तो बिखरा दूँ
चाँदनी की शीतलता
माँगो तो भेंट करूँ
ज्योति और उष्णता

किंतु एक शर्त है
अब तक जिस ज्वाला में तुम जलते आए हो
कुंठाएँ—
वर्जनाएँ—
आज उसे भेंट करो
प्रश्नचिह्न जीवन के आगे से मिटा, कहो—
तेजोमय पौरुष ! हम ही तुम्हारे अग्रज हैं

□□

□□

आज की शाम, लो ! लिख दी तुम्हारे नाम
फिर न कहना कर दिया यूँ ही हमें बदनाम

चाँद का हो राज पर
महिमा सितारों की बड़ी है
गगन चुंबित भवन तक की
नींव धरती में पड़ी है

आस्था अवगुंठनों में—
नेह नित बदलें मुखौटे
दर्द को देते चलें हम—
कुछ नये अंजाम, आज की शाम

लग रहा देते चुनौती से—
सहज संवाद सारे
और काले पृष्ठ बिकते
आवरण के ही सहारे

धुँध कुछ गहरा गई है
रोशनी थर्रा रही है
हर तपन अपनी तपे अब
सूर्य सी निष्काम, आज की शाम

□□

□□

मैंने कब चाहा था
भर दी यह झोली जो—
महके गुलाबों से

जब दे ही डाले तो स्वागत सौगातों का
कम कोमल कलियों का
बहुत बहुत काँटों का

गलबाँही डाल गंध
सौरभ सँग भटक रही
काँटों की चुभन किंतु—
मेरी, बस मेरी है

रहने दो—
रहने दो—
प्रश्नों की फुलझड़ियाँ

कैसे मन बहलेगा कोरे जवाबों से

मैंने कब चाहा था
सोने के दिन
रातें चाँदी की बन जाएँ

दूरी में ही भली है—
सूरज की गरमायी
धरती पर आए तो
दुनिया जल जाएगी

सत्य मत खरीद
मेरे, सपनों के सौदागर

लाभ-हीन सौदा यह—
पूँजी लुट जाएगी
जन्म जन्म ऋणी
किंतु—
साँस है दीवालिया
माटी का मोल यहाँ कौन अब चुकाए
मैंने कब चाहा था
सोने के दिन, रातें चाँदी की बन जाएँ

मैंने कब चाहा था

□□

□□

जिनकी मंजिल ही अनजानी
उनकी राहों का परिचय क्या
रूठी जिनसे भोर बता दें--
वे क्या होती शाम कहाँ पर

दाग लिए सीने में शशि ने
दिया चाँदनी को तन उजला
और हिया निज वेध प्रीत को—
दिया बाँसुरी ने स्वर पहला

लहरों की उच्छृंखलता से—
मिटी न सागर की मर्यादा
रातों का काजल ही तो
भरता तारों में रंग रुपहला

गीत नाश के गाकर यूँ मत—
करो सृजन को अपमानित अब
साँसों की गति बिना मौत का—
होगा अर्ध-विराम कहाँ पर

ठुकराया वे ही करते जो
अपनेपन का दम भरते हैं
जीवन किनमें ज्ञात न
हम सब जीने का अभिनय करते हैं

बिखरी चारों ओर खोखली—
मुस्कानें चुभतीं काँटों सी
खिलने से पहले ही माली
कलियों का विक्रय करते हैं

फूलों का सौंदर्य लुटा है
दो टुकड़े कागज के हाथों
किसे पता गुमराह सुरभि की
गुजरे उम्र तमाम कहाँ पर

बूँद-बूँद पानी मिलने से
और भड़क जाती हैं प्यासें
घड़ी घड़ी गिन कर जीने से
विदा माँगने लगतीं सासें

खोया हुआ अतीत, और सपने
आगत के, सब छलना है
सत्य सिद्धि बस-वर्तमान
यदि भोगें हम निष्ठा से

पलक पिघल गढ़ रही मूर्ति
जिस अनजानी पीड़ा की
भटका हास-विलास करेगा
इसको नमन-प्रणाम कहाँ पर

जिनकी मंजिल ही अनजानी
उनकी राहों का परिचय क्या
रूठी जिनसे भोर बता दें
वे क्या होती शाम कहाँ पर

□□

□□

जाने क्या होता कभी कभी
इन बौराई सुधियों को
सारी राहें भूल द्वार
मेरा ही खटकाती हैं

मेरी साँस साँस बृन्दावन
काशी हर निःश्वास है
नयन सजीले मानसरोवर
पग-पग पर कैलाश है

चारों धाम विलय मुझमें फिर
शेष और क्या साध रही
जनम जनम की प्यास बनी जो
अब भी तरसाती है

तन को तो सौ वसन मिल गए
पर मन तो निर्वसन रहा
जितना चाहा ढाँक रखूँ
उतना ही निष्फल यत्न रहा

सदियाँ चुकीं उढ़ाते बुन-बुन
पल-पल की चूनर चादर
बचा कौन परिधान रहा, अब
जिसे नियति पहनाती है

मैंने विषधर गले लगाए
चंदन-वन के ही कारण
तृण पहुँचे आकाश—किया है
तूफानों का अभिनंदन

लिखी साँझ ने पाती तम को
जलते दीप—करों से
शेष कौन संदेश ? भोर के द्वार
किरन पहुँचाती है

जाने क्या होता कभी-कभी
इन बौराई सुधियों को
सारी राहें भूल द्वार·
मेरा ही खटकाती हैं

□□

□□

रुख से डर पीत-पड़े पत्ते तमाम
पतझर को यूँ ही कर डाला बदनाम

जिनके प्रति चरण उठे
ले कुछ आदर्श
उनकी हर साँस मिटी
करते संघर्ष

नभचुंबी भवनों के गर्वोन्नत भाल
रहती आधार-शिला लेकिन गुमनाम
रुख से डर पीत पड़े पत्ते तमाम
पतझर को यूँ ही कर डाला बदनाम

बातों ने घेर लिए
कर्मों के ठौर
आँखें कुछ कह जातीं
अनुभव कुछ और

छलक रहे स्वर्ण-कलश, प्यासा प्रति कंठ
योगी अभिलिप्त-भोग, भोगी निष्काम
रुख से डर पीत पड़े पत्ते तमाम
पतझर को यूँ ही कर डाला बदनाम

शीश खिली धूप
पलक गहराती साँझ
कजरा जिन आँखों में
तम देता आँज

जिनके पथ निर्देशक आँधी-तूफान
पग-पग निर्माण करें वही देवधाम
रुख से डर पीत पड़े पत्ते तमाम
पतझर को यूँ ही कर डाला बदनाम

□□

□□

सूर्य पहले से प्रखर है
आग में डूबा शहर है
रोशनी—सैलाब सी
लेकिन नजर आती नहीं
वायुमंडल की नमी जाती नहीं

सिंधु आधा हो चुका है
खौलते, बस खौलते ही
तोड़ दी अब तो तराजू भी
स्वयं को तौलते ही

माप की कोई व्यवस्था
रास अब आती नहीं
वायुमंडल की नमी जाती नहीं

शेष है कितनी शहादत
जो सलीबों पर टँगें हम
आँसुओं का तो न कोई रंग
गम जिसमें रँगें हम

दर्द की कोई अवस्था
प्राण कलपाती नहीं
वायुमंडल की नमी जाती नहीं

□□

□□

राख के ढेर में दब कर भला तपना कैसा
अब तो अंगार से दहको तो कोई बात बने

सीले ईंधन सा
धुआँ छोड़ सुलगना, कब तक
बर्फ के शैल हैं
बूँदों में पिघलना, कब तक

हर सुबह धुँधली उगी
हर निशा काली पड़ी
सुर्ख शोले बनो, धधको, तो कोई बात बने
अब तो अंगार से दहको, तो कोई बात बने

अग्नि-सागर में बढ़े
ले के कागज की तरी
तेरे सपनों से लदी
मेरे आँसू से भरी

संयमित, कुंठित, तट—
लेंगे क़्या इम्तहाँ
मनचले ज्वार से बहको, तो कोई बात बने
अब तो अंगार से दहको, तो कोई बात बने

विश्व-दीर्घा में तेरे
चित्र, न जो दीखे थे
इसका मतलब कि—
तेरे रंग बहुत फीके थे

छलके सीपी में जो
सागर से सरस कौन हुआ
शबनमी आँख से ढलको, तो कोई बात बने
अब तो अंगार से दहको, तो कोई बात बने

□□

□□

धूप तक उजली नहीं है
रात भी काली नहीं है
क्या वजह जो शाम कोई
धुँध से खाली नहीं है

सिंधु के सूखे अधर, पर
मेघ संचय कर रहे जल
नीड़ में हारिल उपासे
खा रहे तरुवर स्वयं फल

अर्थ ने अक्षर मिटाए—
रागिनी ने स्वर गँवाए
क्या वजह जो, बीन कोई
सात स्वर वाली नहीं है
क्या वजह जो शाम कोई
धुंध से खाली नहीं है

प्रगति के पथ से हुआ है
चरण का संपर्क इतना
थे कभी तालाब में, अब
खाइयों में—फर्क इतना

हर कमल कीचड़ लपेटे
गंध चंदन वन न देते
क्या वजह बीहड़ बहुत है
किंतु हरियाली नहीं है

मौन तक मुँह को सिले पर
शोर बढ़ता जा रहा है
धार का सैलाब अब तो
द्वार से टकरा रहा है

आग में घिरता शहर है
और हम सब बेखबर हैं
सूरमा तो सब, उठी हर बाँह
बलशाली नहीं है
क्या वजह जो शाम कोई धुंध से खाली नहीं है

धूप तक उजली नहीं है
रात भी काली नहीं है

□□

□□

जाने क्यों काँप उठा
दीप तले-तुलसी का
मैंने तो मावस का
हाल भर बताया था

मेघों के माथे पर
छलक उठे स्वेद-बिंदु
उतर गए चेहरे, कुछ
ऊँचे दिनमानों के

अंबर ने थाम लिए
स्वर्ण कलश मंदिर के
डूब गए गलियारे
अधबने मकानों के

संयम ने भर डाले
सभी कक्ष जीवन के
मैंने तो स्वागत में
द्वार भर सजाया था

जाने क्यों काँप उठा
दीप तले-तुलसी का
मैंने तो मावस का
हाल भर बताया था

संशय की शाखों पर
शक्ति के घरौंदे हैं
मधु के सौदागर ने
कूप नये खोदे हैं

बूँद-बूँद गिरवीं है
गागर नीलाम हुई
प्यासों के मेले में
घूँट-घूँट सौदे हैं

कुछ अतृप्त साधों की
'अपनी' लाचारी थी
मैंने तो पनघट ही—
दाँव पर लगाया था

जाने क्यो काँप उठा,
दीप तले-तुलसी का—
मैंने तो मावस का
हाल भर बताया था

□□

□□

फागुनी मन, उमंग अंगूरी
सावनी तन, तरंग सिंदूरी
अपना ही दर्द हो गया दंभी
कैसी आसों पै जी लिए हम भी

फूली सरसों सुवर्ण शरमाए—
सुर्ख टेसू अनंग हर लाए
भूले संयम पलाश के वन भी
कैसे रँगों में जी लिए हम भी

भोले फूलों की तिरछी चितवन है
तृप्त माली है, प्यासा उपवन है
बाँटती है अंगार शबनम भी
कैसे ढंगों में जी लिए हम भी

□□

□□

गीतों में डूबने को
सारी उमर पड़ी है
छंदों की साधना से
आओ, तुम्हें मिला दूँ

पीड़ा से प्रज्ज्वलित है
जीवन की यज्ञवेदी
आँखों ने आचमन कर—
मंत्रों को शक्ति दे दी

पल बन जले अगरु से
गंधित ऋचा गढ़ी है
इस पुण्य प्रार्थना से—
आओ तुम्हें मिला दूँ
छंदों की साधना से
आओ, तुम्हें मिला दूँ

पतझड़ के आक्रमण से
कुछ फूल जो बचे हैं
यह तो न बहारों के
अंगार ने रचे हैं

खिलने में शबनमी यह
झड़ने में फुलझड़ी है
इस योग-यंत्रणा से
आओ, तुम्हें मिला दूँ
छंदों की साधना से
आओ, तुम्हें मिला दूँ

ज्वाला कहाँ रखे जो
सूरज सुबह न बाँटे
आँचल कहाँ थमे
हों यदि फूल में न काँटे

समझो तो जिंदगी ही
साँसों की सतलड़ी है
इस रम्य सर्जना से
आओ तुम्हें मिला दूँ

गीतों में डूबने को
सारी उमर पड़ी है
छंदों की साधना से
आओ तुम्हें मिला दूँ

□□

डा० रमा सिंह



जन्मतिथि

२३ मई, १९२७

शिक्षा

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (राजनीति) एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

साहित्य

'समुद्रफेन' (कविता)

कार्य

संप्रति—रीडर, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय

विशेष

देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, लेख, समीक्षा, संस्मरण छपते रहते हैं। इनकी रचनाओं का देश की प्रादेशिक भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। समाज-सेवा के विविध क्षेत्रों में विशेषकर महिला संगठनोंऔर समाज-कल्याण के संगठनों में महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करती रही हैं। आकाशवाणी, दूरदर्शन से रचनाओं के प्रसारण प्रायः होते रहते हैं।

काव्य-रचना की बात उठाते हुए दो विशिष्ट लेखकों के दो कथ्य मेरे मन में अक्सर आते हैं, एक तो सेसिल डे लुईस का कवि-संबंधी दृष्टिकोण और दूसरा टी० एस० इलियट की दृष्टि में कवि-व्यक्तित्व की अर्हताएँ। सेसिल डे लुईस 'ए होप फार पोयट्री' में अपना दृष्टिकोण इस तरह रखते हैं कि "एक कवि तब तक कुछ नहीं है जब तक वह अपने वातावरण के प्रति जागरूक नहीं है। जब उसकी धमनियों में रक्त का संचार वेग से होता है या उसके हृदय का स्पंदन बढ़ जाता है तब यदि वह इस प्रतिक्रिया को अपने काव्य में नहीं उतारता तो आश्चर्य की बात होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि साहित्य-स्रष्टा की प्रतिक्रियाएँ वातावरण-जन्य होती हैं।" इसी संदर्भ में टी० एस० इलियट कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि कवि "केवल सुंदरता के संसार में ही अपने को सीमित न करे, वरन् रूप-कुरूप तथा निराशा और आशा सभी को देखे।" मैं इन दोनों कथनों को कवि और काव्य-रचना के संबंध में बहुत सच मानती हूँ। वातावरण के प्रति जागरूकता और रूप-कुरूप सभी के प्रति संवेदनशीलता रचनाधर्मिता की दो बहुत बड़ी शर्तें हैं। यदि कवि केवल सौंदर्य

और कल्पना की अतिरंजना को ही कवि-धर्म मानकर चले और असुंदर तथा कुरूप से परहेज करे तो वह सही अर्थों में रचनाकार तो नहीं ही है।

आज का परिवेश तो रचनाकार के लिए एक और बड़ी चुनौती लेकर सामने आया है। अभी तक क्रांति शब्द का एक परिपाटीबद्ध अर्थ था—असहयोग, तोड़-फोड़, विध्वंस आदि। परंतु अब हम जिस दौर से गुजर रहे हैं, वह निर्माण की क्रांति का युग है; किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र को अपना अस्तित्व बनाए रखने और विकास की ओर बढ़ने के लिए निर्माण और विकास में वही ऊर्जा और जोश लाना अपेक्षित है जो क्रांति के दौरान किसी राष्ट्र के जीवन का अंग बन जाता है। हमारे आज के नव निर्मित होते हुए समाज के लिए रचनाकारों का जीवन समर्पित होना ही चाहिए। सचाई यह है कि केवल शब्दों से खिलवाड़ या शब्दों की तरतीब बिठाना ही कविता की चरम परिणति नहीं है, चरम लक्ष्य है—राष्ट्र और आम आदमी।

मुझे लगता है कि कवि आम आदमी की ज़िंदगी के तमाम ऊहापोहों के साथ जब अपने को जोड़ देता है तभी उसकी रचना उस धरातल पर आती है जहाँ वह केवल व्यक्ति न रहकर जन-जीवन का प्रतिनिधि बन जाता है और उसकी कविता उसकी निजी संपत्ति न रहकर जन-जीवन के लिए वरेण्य निधि बन जाती है। अपनी जीवन-चर्या के दौरान कवि तमाम मनःस्थितियों से गुजरता है, उसका परिवेश उसे तरह-तरह से झकझोरता है और ये सारी प्रतिक्रियाएँ और प्रभाव उसकी रचना में रूपायित होते हैं। इसीलिए हमें कहीं कवि के मन में घुमड़ती वेदना के दर्शन होते हैं, कहीं उसकी आस्था का स्वर सुनाई देता है और कहीं उसके आस-पास छाए तमाम वातावरण की सूक्ष्म अनुगूँज सुनाई देती है। सर्जना का यह धरातल वैविध्य से भरा-पूरा होकर साहित्य के रूप में किसी भी राष्ट्र की बहुमूल्य थाती बन जाता है।

—डॉ० रमा सिंह

□□

जैसे संगीत की कोई धुन
मन में बार-बार गूँजे
परंतु गीत की कड़ी सो जाए

जैसे अचानक कोई परिचित सा चेहरा दीखे
परंतु परिचय का—
संदर्भ खो जाए

जैसे चलने की तैयारी
पूरी होते ही
किसी गृहस्थिन की चाबी का गुच्छा गुम जाए

जैसे पार्टी में जाने पर
गेट पर उतरते ही, रिक्शे की कील से
साड़ी फट जाए

जैसे परीक्षा-भवन की देहरी लाँघते ही—
किसी छूटे हुए प्रश्न का उत्तर
बिजली सा कौंध जाए

जैसे नृत्य की भंगिमा के बीच
मंच पर—पैरों के घुँघरू
खुल जाएँ

□□

नन्हें-नन्हें फूल
लिख रहे हैं लघु-कथाएँ
ओस की बूँदों में
प्रतिबिंबित व्यथाएँ

ऋतुओं ने लिखी हैं
धारावाहिक कृतियाँ
पतझर ने लिखे संस्मरण
झरती पत्तियों में
अंकित स्मृतियाँ

प्रवहमान झरने
प्रबंध-काव्य रचने में व्यस्त
गीत-कार विहग
लय-तान के अभ्यस्त

□□

□□

अच्छा ही हुआ
फूलों को वाणी नहीं मिली...

इनकी सब कथा
रंगों में पली
इनकी सब महिमा
सुगंधि बन ढली
अच्छा ही हुआ—
इन्हें वाणी नहीं मिली

अच्छा ही हुआ
इन्हें शब्दों की थाती नहीं मिली—
इनकी सब व्यथा
पंखुरी बन झरी

इनका दुख सहलाने
पारदर्शी ओस गिरी
अच्छा ही हुआ
इन्हें शब्दों की थाती नहीं मिली...

अच्छा ही हुआ
इन्हें नहीं मिली अभिव्यक्ति...
मिट्टी के किनकों पर
बिखरी सब अनुरक्ति
हवा की लहरियों में
मुक्त हुई आसक्ति
अच्छा ही हुआ
इन्हें मिली अभिव्यक्ति

इन्होंने—जो कुछ भी करना था—
किया
इन्होंने जो कुछ भी देना था—
दिया
शब्दों की माया में
बाँधा नहीं व्यक्तित्व
जी लिया सहज ही
क्षण-भंगुर अस्तित्व
अच्छा ही हुआ...
इन्हें नहीं मिली वाणी
नहीं मिले शब्द
नहीं मिली अभिव्यक्ति
□□

□□

प्रामाणिकता :

बच्चों के अधरों से
हँसी के फव्वारे का उन्मुक्त छूटना
अकृत्रिम भोलेपन का
हर उठती फुहार में झाँकना...

स्पष्टता :

ओस की बूँद का
पारदर्शी चमकता सा आइना
धूल के एक कण का
निमिष भर में न ठहरना...

विवशता :

झरी हुई पत्ती का
हवा के हर थपेड़े पर भटकना
हर झोंके में गति के प्रत्येक
चरण का बँधना...

विद्रोह :

अथाह जलराशि में
कंकड़ी का वेग के साथ गिरना
दायरे के बाद अनेक
दायरों का उठना...

□□

□□

यदि नहीं मैंने जिया
यह दीर्घ जीवन
यदि नहीं मैंने जिए
ये वर्ष कल्पांतर
सिर्फ बिजली की तरह से
कौंधकर

यदि एक लघु-क्षण ही जिया मैंने
तो क्या हुआ
सिर्फ हल्की-सी हँसी से
ऊँघते अवकाश को
ज्योतित किया मैंने
तो क्या हुआ
एक क्षण तो जी लिया मैंने

□□

□□

यह वसंत बालक है
इसको निहारो लो
मनहारी शोभा पर
राई-नोन वारो तो

नन्ही नन्ही कलियाँ हैं
या कि ये—
दूध की दंतुलियां हैं
सरसों की क्यारी है
या कि एक—
नटखट किलकारी है
कोमल सी पत्तियाँ
या कि ये हथेलियाँ
बजाती हैं तालियाँ
तइयाँ-ता-तइयाँ-ता

भौरों की गुनगुन में
कोई माँ गाती है
टेसू के लाल लाल
झबले पहनाती है
कोयलों के बोलों पर
थिरक कर नाचती है
ता-था-ता भैया

हरे-भरे आँगन में
दूब के बिछौने पर
झूम रही माँ बयार
ठुमक-ठुमक नाच रहा—
है वसंत भैया
ता-ता-ता थैया

□□

□□

गेंद ने कहा—
बच्चे बड़े शैतान हैं
मुझे हर समय
इधर से उधर ढकेलते हैं
काश ! मैं चौकोर होती...

मेज के कागज बोले—
यह पेपरवेट बड़ा बेरहम है
हर समय
हमारी गर्दन दबाए रहता है
काश ! हम भी भारी होते...

पर्वत बोला—
यह नदी बड़ी कृतघ्न है
मुझसे ही जीवन पाकर
छलाँगें मार मार कर बढ़ी जाती है
काश ! मैं गतिशील होता...

□□

□□

शांत जल का यह धुला फैलाव
जैसे पुर चुका हो एक गहरा घाव
या करीने से बिछी
यह एक चादर
नहीं सिलवट एक भी जिस पर

किंतु सहसा
वृत्त के आकार की लहरें उठीं
किस अदेखे बिंदु पर
टूटी हुई ये परिधियाँ इतनी टिकीं

लो ! अचानक भीतरी सब पर्त
खुल—आए
बहुत से घेरे बराबर
बने-बिगड़े दूर तक छाए
और यह सब इसलिए
केवल किसी ने वह जरा-सी कंकड़ी फेंकी

□□

□□

मेरे शब्दों का
रूप था
स्याही-सा काला
हे समय के देवता
तुमने इन्हें
अपने श्वेत पृष्ठों पर उतारा
क्या कहूँ तुम्हारे प्रति
मैं सहज कृतज्ञ हूँ

मेरे ये शब्द थे
दर्पण-से कोरे
हे जन देवता
तुमने इनमें झाँककर
अपने ही, बिंबों के रंग बोरे
क्या कहूँ, तुम्हारे प्रति
मैं सहज कृतज्ञ हूँ

□□

□□

तुम्हारे अंगूठे पर लगी
काली स्याही
जो तुमने हस्ताक्षर की जगह लगाई
वह स्याही नहीं
कलंक का टीका है समाज का
यह कलंक धुलेगा
रोशनी की किरण से—
आँसू पोंछो मेरे भाई

गिरवीं में रखे गए, वे चाँदी के कड़े
जो तुम्हारे पसीने की बूँदों ने खरीदे थे
तुम्हारी घरवाली के लिए
वे फिर वापिस मिलेंगे—
आँसू पोंछो मेरे भाई

बंधक में रखी गई तुम्हारी क्षमता
मुक्त होगी
और तुम्हारी मेहनत के फल
तुम्हारी अँजुरी में ही गिरेंगे—
आँसू पोंछो मेरे भाई

तुम्हारा 'सवा सेर' गेहूँ का कर्ज
अब सवा पाँच मन के कर्ज में नहीं बदलेगा
ब्याज-दर-ब्याज की रफ्तार से बढ़ने वाले
निर्मम और अन्यायी बहीखातों के अंक
नई रोशनी में धुलेंगे—
आँसू पोंछो मेरे भाई

□□